इकाई 1 शिक्षा तथा व्याकरण–स्वरूप, प्रयोजन एवं प्रतिपाद्य

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 शिक्षा का स्वरूप

1.3 प्रमुख प्रातिशाख्यग्रन्थ

1.4 प्रमुख शिक्षाग्रन्थ

- 1.4.1 ऋग्वेदीय प्रमुख शिक्षाग्रन्थ
- 1.4.2 शुक्लयजुर्वेदीय शिक्षाग्रन्थ
- 1.4.3 कृष्णयजुर्वेदीय शिक्षा ग्रन्थ
- 1.4.4 सामवेदीय शिक्षा ग्रन्थ
- 1.4.5 अथर्ववेदीय शिक्षाग्रन्थ

1.5 शिक्षा का प्रयोजन

- 1.5.1 शिक्षा का प्रतिपाद्य
- 1.5.2 उच्चारण स्थान
- 1.5.3 प्रयत्न
- 1.5.4 साम

1.6 व्याकरण का स्वरूप

1.7. व्याकरण का प्रयोजन

- 1.7.1 रक्षा
- 1.7.2 ऊह
- 1.7.3 आगम
- 1.7.4 लघु
- 1.7.5 असन्देह

1.8 व्याकरणशास्त्र का प्रतिपाद्य

- 1.8.1 प्रथम अध्याय
- 1.8.2 द्वितीय अध्याय
- 1.8.3 तृतीय अध्याय
- 1.8.4 चतुर्थएवं पञ्चम अध्याय
- 1.8.5 षष्ठ अध्याय
- 1.8.6 सप्तम अध्याय
- 1.8.7 अष्टम अध्याय
- 1.8.8 प्रत्याहार
- 1.8.9 अनुबन्ध
- 1.8.10 गणपाठ
- 1.8.11 अनुवृत्ति

1.9 सारांश

1.10 पारिभाषिक शब्दावली

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

1.11 बोधप्रश्न

1.12 सन्दर्भग्रन्थ –सूची

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- शिक्षा नामक वेदांग के स्वरूप से अवगत हो जायेंगे।
- प्रातिशाख्य ग्रंथों की संख्याएवं विषयवस्तु को समझ जायेंगे।
- शिक्षा और प्रतिशाख्य के प्रयोजनों से भली–भॉति परिचित हो जायेंगे।
- व्याकरण नाम के वेदांग से परिचित हो जायेंगे।
- व्याकरण के अंतर्गत अध्ययन–क्षेत्रों से अवगत हो जायेंगे।
- व्याकरण के प्रयोजन को समझ जायेंगे।

1.1 प्रस्तावना

वेद विश्वसाहित्य की अमूल्य निधि हैं। इसके छह अंग हैं –शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष।

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तो कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोतमुच्यते।।

शिक्षाघ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते।।

इन दोनों श्लोकों में छन्दशास्त्र को वेदपुरुष का पैर, कल्पशास्त्र को हाथ, ज्योतिषशास्त्र को नेत्र, निरुक्तशास्त्र को कान, शिक्षा को नाक और व्याकरण को मुख कहा गया है। जो मनुष्य वेदों को उनके इन छह अङ्गो के साथ अध्ययन करता है, वही परमपद को प्राप्त करता है। यहाँ पर उपर्युक्त सभी शास्त्रों के लिए अङ्ग शब्द का प्रयोग अंश या भाग अर्थ में नहीं हुआ है अपितु उसका अर्थ उपकारक है क्योंकि वेद के अङ्ग शरीर के अङ्गों के जैसे नहीं हैं। वेद की सत्ता वेदाङ्गो के बिना भी बनी रहती है कितु शरीर का अस्तित्व अङ्गों के अभाव में नहीं रहता है। वेदाङ्गों का उल्लेख गोपथब्राह्मण, गौतमधर्मसूत्र, रामायण तथा बौधायनधर्मसूत्र आदि अनेक प्राचीन ग्रन्थों में है। वेदाङ्गों के रचनाकाल को लेकर आचार्यो के मध्य विवाद है। जयचन्द्र विद्यालंकार ने वेदाङ्गों का समय 400 ई0 पूर्व से लेकर 200 ई0 पूर्व के मध्य में स्वीकार किया है। शंकरबालकृष्ण दीक्षित के अनुसार वेदाङ्ग–काल 150 शकपूर्व से लेकर 500 शकपूर्व के मध्य रहा होगा। भले ही वेदाङ्गों के काल पर आचार्यगण के मत कुछ भी रहे हों किन्तु शास्त्र के रूप में उनके महत्त्व को सभी मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है।

1.2 शिक्षा का स्वरूप

वेदाङ्गों में शिक्षा का प्रथम स्थान प्राप्त है। यदि वेद कीएक पुरुष रूप में परिकल्पना हो, तो यह शिक्षा वेदरूपी पुरुष की नासिका है। जिस प्रकार से शरीर के सभी अंगो के स्वस्थ और सुंदर रहने पर भी नासिका के अभाव में किसी का भी स्वरूप भद्दा

और अपूर्ण प्रतीत होता है, उसी प्रकार शिक्षा नामक वेदाङ्ग के अभाव में वेदपुरुष के स्वरूप की कल्पना पूर्ण नहीं होती। शिक्षा नामक वेदाङ्ग से तात्पर्य है कि वह विद्या, जिसको पढ़ने से हम वेद मन्त्रों में प्रयुक्त सभी वर्णों के स्वरूप को पहचानने लगते हैं, उन वर्णों का उच्चारण मुख में कहाँ से होगा, यह भली भाँति समझ जाते हैं तथा वर्णो में जो स्वर प्रयुक्त हैं, उनका ज्ञान हो जाता है। प्राचीन काल में सभी विद्याएं सुन कर ग्रहण की जाती थी। आश्रम में आचार्य मन्त्रोच्चारण करते थे और सभी शिष्य उसे सुन कर वैसे ही उच्चारण का अभ्यास करते थे। इस परम्परा को अनुश्रवण परम्परा कहते हैं। समस्त वैदिकशास्त्रों का अध्ययन अनुश्रवण परम्परा पर आधारित था। मन्त्रों के उच्चारण की उचित विधि को बताने का कार्य शिक्षा नामक वेदाङ्ग करता है। ब्राह्मणग्रन्थों में शिक्षा सम्बन्धी नियमों का उल्लेख स्थान–स्थान पर प्राप्त होता है। शिक्षा के प्रमुख विषयों का उल्लेख सर्वप्रथम तैत्तिरीयोपनिषद् की प्रथम वल्ली में हुआ है। तैत्तिरीय– उपनिषद् कुल तीन वल्लियों में विभाजित है। इसके प्रथम वल्ली का नाम ही शीक्षावल्ली है। आचार्यों को अनुसार उपनिषद् के इस वल्ली का शीक्षा नाम रखना वैदिक परम्परा में शिक्षा नामक वेदाङ्ग के महत्व को प्रकट करता है। शिक्षा वेदाङ्ग के अंतर्गत दो प्रकार के ग्रन्थ मिलते हैं–प्रातिशाख्यएवं शिक्षाग्रन्थ। शिक्षा सम्बन्धी वर्ण्य–विषय इन ग्रन्थों से पूर्व ब्राह्मण–ग्रन्थोंएवं उपनिषद्ग्रंथों में प्राप्त होते हैं किन्तु स्वतन्त्र तथा विस्तार से ये प्रातिशाख्य और शिक्षाग्रन्थों में ही प्रतिपादित हुए हैं।

1.3 प्रमुख प्रातिशाख्य ग्रन्थ

प्राचीन परम्परा में प्रत्येक वेद के अपने–अपने प्रातिशाख्य थे, जो अपने वेद के उच्चारण सम्बन्धी सभी विशेषताओं पर विस्तार से विचार करते हैं। ब्राह्मणग्रन्थों के काल तक वेद केवल मौखिकएवं श्रुतिपरम्परा से सुरक्षित होते चले आये थे। कालान्तर में जब वैदिक भाषा उच्चारण में अन्तर आने लगा और उसका, उसी रूप में उच्चारण करना कठिन हो गया। आचार्यों ने अनुभव किया कि वैदिक मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण को मौखिक परम्परा में तब तक सुरक्षित नहीं रखा जा सकता था जब तक वर्ण, स्वर, सन्धि, छन्द, संस्कार आदि के सामान्य नियम न बनाए जाए। इसलिए उनके द्वारा यह कार्य प्रातिशाख्य ग्रन्थों की रचना द्वारा किया गया। कुछ आचार्य प्रातिशाख्य को व्याकरण के अन्तर्गत मानते हैं। प्रातिशाख्य की व्युत्पत्ति है– प्रातिशाखं भवं इति प्रातिशाख्यम्। इसका अर्थ है कि प्रत्येक संहिता की जितनी भी शाखाएं रही होंगी उन सब के अपने–अपने प्रातिशाख्य ग्रन्थ भी होंगे। इसके विपरीत दूसरे आचार्यों का मत है किएक वेद की जितनी शाखाएं थीं, उनमें से दो या तीन शाखाओं का सामूहिक रूप सेएक प्रातिशाख्य था। जैसे–ऋग्वेद की शाकल शाखा और वाष्कल शाखा काएक ही प्रातिशाख्य **'ऋग्वेदप्रातिशाख्य'** है। यह ऋग्वेद काएकमात्र उपलब्ध प्रातिशाख्य है। इस प्रातिशाख्य के रचयिता आचार्य शौनक हैं। ये आश्वलायन के गुरु थे। पाणिनि ने अष्टाध्यायी के अनेक सूत्रों में इनका उल्लेख किया है। दूसरा प्रातिशाख्य 'वाजसनेयिप्रातिशाख्य' शुक्लयजुर्वेद काएकमात्र उपलब्ध प्रातिशाख्य है। यह प्रातिशाख्य शुक्ल यजुर्वेद की दोनों शाखाओं माध्यन्दिन और काण्व शाखा के स्वर तथा वर्णोच्चारण सम्बन्धी विधियों का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत करता है। इस प्रातिशाख्य के प्रणेता कात्यायन ऋषि हैं। विद्वानों के अनुसार प्रातिशाख्य के रचयिता कात्यायन अष्टाध्यायी के सूत्रों पर वार्तिक लिखने वाले वररुचि कात्यायन से पृथक् थे। आचार्यों ने प्रातिशाख्यों को अष्टाध्यायी से प्राचीन माना है, इससे भी स्पष्ट है कि वार्तिककार कात्यायन और प्रातिशाख्य के प्रणेता कात्यायन दोनों दो व्यक्ति थे। **'तैत्तिरीयप्रातिशाख्य'** कृष्णयजुर्वेद काएकमात्र उपलब्ध प्रातिशाख्य है। यह नाम से भले

ही तैत्तिरीयसंहिता से संबंधित प्रतीत हो किंतु इसमें कृष्ण यजुर्वेदीय सभी संहिताओं के स्वरोंएवं वर्णोच्चारण सम्बन्धी नियमों का वर्णन है। सामवेद के सभी प्रातिशाख्य ग्रन्थ उपलब्ध हैं। इनका नाम प्रातिशाख्य न हो कर तन्त्र है – ऋक्तन्त्र ,सामतन्त्र और अक्षरतन्त्र। ऋक्तन्त्र नामक सामवेदीय प्रातिशाख्य का सम्बन्ध कौथुम शाखा से है। इसे सामवेद का व्याकरण ग्रन्थ माना जाता है, क्योंकि इसमें वर्णोच्चारण के प्रकार, स्थान, उनकी संज्ञा, सन्धि, स्वरों के साथ–साथ व्याकरण सम्बन्धी नियमों का उल्लेख है। सामतन्त्र सामवेद के कौथुम शाखा का ही दूसरा प्रातिशाख्य है। यह ऋक्तन्त्र का उत्तर भाग है क्योंकि ऋक्तन्त्र जहाँ पर समाप्त होता है सामतन्त्र वहीं से प्रारम्भ होता है। ऋक् तन्त्र के रचयिता का नाम अज्ञात है। औद्वजि नामक आचार्य को सामतन्त्र का प्रणेता माना जाता है। अक्षरतन्त्र का सम्बन्ध भी सामवेद के कौथुम शाखा से ही है। जिस प्रकार सामतन्त्र ऋक्तन्त्र का उत्तरभाग है, उसी प्रकार अक्षरतन्त्र सामतन्त्र का उत्तर भाग है। इसलिए इसके रचयिता भी औद्वजि है। आचार्य सत्यव्रत सामश्रमी के अनुसार अक्षरतन्त्र के रचयिता भगवान् आपिशालि हैं। अथर्ववेद के दो प्रातिशाख्य मिलते हैं–चतुरध्यायिका और अथर्ववेद प्रातिशाख्य। चतुरध्यायिका का सम्बन्ध अथर्ववेद की शौनकीय शाखा से है किन्तु अथर्ववेद प्रातिशाख्य अथर्ववेद के सभी शाखाओं का सामान्य प्रातिशाख्य है। अथर्ववेदप्रातिशाख्य का रचयिता अज्ञात हैं परन्तु यह निश्चित है कि इसकी रचना चतुरध्यायिका के बाद हुई है –

1.4 प्रमुख शिक्षा ग्रन्थ

शिक्षा वेदाङ्ग के अन्तर्गत शिक्षा नाम से अनेक ग्रन्थ मिलते हैं। ये शिक्षा ग्रन्थ पूर्ण रूप से वेद की किसी शाखा का अनुसरण करते हैं तथा उस शाखा के वर्णएवं स्वरादि मन्त्रोंच्चारण सम्बन्धी विशिष्टताओं को बताने का कार्य करते हैं। कुछ शिक्षा ग्रन्थ सूत्र रुप में और कुछ श्लोक रूप में रचित हैं। कतिपय शिक्षा ग्रन्थों की सूची इस प्रकार है–

1.4.1 ऋग्वेदीय प्रमुख शिक्षाग्रन्थ

- स्वराकुंशा शिक्षा
- षोडशश्लोकी शिक्षा
- शैशिरीय शिक्षा
- आपिशालि शिक्षा
- पाणिनि शिक्षा

1.4.2 शुक्लयजुर्वेदीय शिक्षाग्रन्थ

- याज्ञवल्क्य शिक्षा
- वासिष्ठी शिक्षा
- कात्यायनी शिक्षा
- पाराशरी शिक्षा
- माण्डव्य शिक्षा
- अमोघनन्दिनी शिक्षा
- लघु अमोघनन्दिनी शिक्षा

- माध्यन्दिनी शिक्षा
- वर्णरत्नप्रदीपिका शिक्षा
- केशवी शिक्षा
- हस्तस्वर प्रक्रिया
- अवसान निर्णय
- स्वरभाक्ति परिशिष्ट
- क्रमसन्धान
- मनःस्वार शिक्षा
- यजुर्विधान शिक्षा
- स्वराष्टक शिक्षा
- क्रमकारिका शिक्षा

1.4.3 कृष्णयजुर्वेदीय शिक्षा ग्रन्थ

- भारद्वाज शिक्षा
- व्यास शिक्षा
- शम्भुशिक्षा
- कोहलीय शिक्षा
- सर्वसम्मत शिक्षा
- आरण्य शिक्षा
- सिद्धान्त शिक्षा

1.4.4 सामवेदीय शिक्षा ग्रन्थ

- लोमशी शिक्षा
- गोतमी शिक्षा
- नारदीय शिक्षा

1.4.5 अथर्ववेदीय शिक्षाग्रन्थ

- **माण्डूकी शिक्षा**

इस प्रकार वर्तमान में कुल 34 शिक्षाग्रन्थ प्राप्त होते हैं । इनमें पाणिनि शिक्षा और व्यास शिक्षा विशेषरुप से महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त शेष जिन ऋषियोंएवं आचार्यों के नाम वाले शिक्षा ग्रन्थ हैं , वे सभी उन ग्रंथों के रचनाकार नहीं हैं बल्कि उनके नियमों को उक्त ग्रन्थों में निबद्ध किया गया है ।

1.5 शिक्षा का प्रयोजन

शिक्षा का प्रमुख प्रयोजन है–वेद मन्त्रों के शुद्धएवं उत्तम उच्चारणपद्धति का प्रतिपादन करना। वेदएक विशेष प्रकार के अलौकिक शास्त्र हैं। जिनका शुद्ध –उच्चारण करने मात्र के, शास्त्रों में असीमित फल बताये गए हैं। अतः इनके सम्यक् अनुशीलन से धर्म,

अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों की सिद्धि होती है। मन्त्रों में स्थित स्वरों का सम्यक् उच्चारण करने पर ही उनमें स्थित अर्थ प्रकाशित होते हैं। वेद में उच्चारण द्वारा मन्त्रार्थ की नियामकता के कारण मन्त्रों के दोषरहित और प्रमादरहित पाठ पर अत्यधिक बल दिया जाता है। वेद सभी प्रकार के लौकिकएवं अलौकिक फलों को प्रदान करते हैं लेकिन इनके कल्पवृक्ष स्वरूप का लाभ पाने के लिए मन्त्रों का शुद्धएवं स्वरयुक्त उच्चारण प्रथम अनिवार्य शर्त है। यही कारण हैं कि उच्चारण विधियों का प्रतिपादन करने वाली शिक्षा वेदाङ्गों में प्रथम स्थान रखती है। उच्चारण की दृष्टि से महत्वपूर्ण सभी विषयों का ज्ञान कराना ही शिक्षा का प्रयोजन है। जैसे –

1. **वर्णोएवं स्वरों का पूर्ण ज्ञान** – मन्त्रों में प्रयुक्त वर्णो के उच्चारणस्थान, स्वर मात्रा और यत्न इत्यादि के प्रकार का भली –भाँति ज्ञान कराना शिक्षा का प्राथमिक प्रयोजन है। मन्त्रों में प्रमुख रूप से तीन प्रकार के स्वर विद्यमान हैं – उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। इसके अतिरिक्त प्रचय और जात्य स्वरित के अनेक भेद मिलते हैं। मन्त्रोच्चारण में स्वरों की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इन स्वरों का पूर्ण ज्ञान तथा सन्धि इत्यादि प्रक्रिया अवस्था में स्वरों की स्थिति का ज्ञान कराना शिक्षा के महत्वपूर्ण प्रयोजनों में सेएक है।

2. **स्वरों तथा उच्चारण विधियों का ज्ञान –** मन्त्रपाठ में उदात्त आदि स्वरों का नियमानुसार प्रयोग, सन्धि इत्यादि व्याकरण सम्बन्धी विकारों का प्रभाव तथा अपनी शाखा के उच्चारण सम्बन्धी विशिष्टताओं का पूर्ण ज्ञान कराना शिक्षा का द्वितीय महत्वपूर्ण प्रयोजन है ।

3. **उत्तम और अधम वेदपाठी का लक्षण** – सभी शिक्षाग्रन्थ उत्तम और अधम वेदपाठी के लक्षणों का ज्ञान कराते हैं।एक वेदपाठी के उच्चारण में किन गुणों का समावेश होना चाहिए तथा उत्तम पाठक का लक्षण क्या है। शिक्षाग्रन्थ इसका प्रतिपादन करते हैं। इसके साथ ही उच्चारण में किन दोषों का प्रवेश नहीं होना चाहिए इसका भी निर्देश दते हैं। पाणीनीयशिक्षाग्रन्थ में उत्तम पाठकएवं अधम पाठक के लक्षणों की विस्तार से चर्चा है।

1.5.1 शिक्षा का प्रतिपाद्य

इस वेदाङ्ग का मुख्य प्रतिपाद्य स्वरएवं उच्चारण प्रक्रिया है। जिसमें वर्णमाला से लेकर उच्चारण के गुणएवं दोष तक का समावेश है। शिक्षाग्रन्थों के प्रमुख प्रतिपाद्य इस प्रकार हैं –

- **वर्ण**

  शिक्षा नामक वेदाङ्ग का प्रथम प्रतिपाद्य संस्कृत वर्णमाला है। सामान्य रूप से संस्कृत वर्णमाला कहने पर पूर्व की कक्षाओं में पठित माहेश्वर सूत्रों में सम्मिलित वर्णों ध्यान आता है लेकिन वर्णों का प्रथम उल्लेख शिक्षा नामक वेदाङ्ग करता है। पाणिनीय शिक्षाग्रन्थ के अनुसार संस्कृतएवं प्राकृतभाषा दोनों में कुल तिरसठ या चौंसठ वर्ण होते हैं। जिनका पूर्ण ज्ञान प्रत्येक अन्तेवासी के लिए अनिवार्य था। स्वरों की संख्या इक्कीस है। वर्णों की संख्या में अन्तर देखकर भ्रमित नहीं होना चाहिए क्योंकि कहीं पर अचों की गणना भेद सहित है और कहीं पर भेदरहित है। अतः गणना की दृष्टि ही संख्या भेद का कारण है। क से म तक कुल पच्चीस वर्ण स्पर्श हैं। य, व, र, ल तथा श, ष, स, और ह ये आठ हैं। चार यम तथा अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीयएव उपध्मानीय वर्ण हैं। इन्हें अयोगवाह

कहते हैं। ळएवं ळह् ये दो ध्वनियां भी हैं। वहीं पर वर्णों के स्वर के आधार पर, काल के आधार पर, उच्चारण के आधार पर प्रयत्न के आधार पर तथा अनुप्रदान के आधार पर पाँच विभाग भी बताये गए हैं। इन विभागों के आधार वर्णों का अध्ययन ही शिक्षा का प्रमुख प्रतिपाद्य है। प्रातिशाख्य ग्रन्थों में अ,आ,इ,ई,उ,ऊ,ऋ,ॠ, ऌ को समानाक्षर औरए, ओ,ऐएवं औ का सन्ध्याक्षर कहते हैं।

- **स्वरः**

इस वेदाङ्ग के सभी ग्रन्थ मुख्यालय से स्वरों की चर्चा करते हैं। पाणिनीयशिक्षा में वर्णो का प्रथम विभाग स्वर के आधार पर बताया गया है। स्वर से तात्पर्य उदात्त, अनुदात्त, स्वरित है। पुनः उदात्त स्वर के अन्तर्गत संगीतशास्त्र में प्रयुक्त निषाद और गान्धार ये दो स्वर तथा अनुदात्त में ऋषभ और धैवत ये दो स्वर होते हैं। षड्ज, मध्यम, पञ्चम ये तीन स्वरितस्वर के भेद हैं। ये सभी स्वर ऋग्वेदीय मन्त्रपाठ से लेकर सामगायन तक में महत्वपूर्ण हैं। जिन स्वरवर्णों में उदात्त स्वर लगा होता है, उनका उच्चारण गले के उर्ध्व भाग से अथवा ऊँचे स्वर में होता है – उच्चैरुदात्तः। इसी प्रकार जिन वर्णों पर अनुदात्त के चिह्न लगे होते हैं, उनका उच्चारण गले के अधोभाग से होता है–नीचैरनुदात्तः। जिन वर्णों के उच्चारण मध्यम स्वर में होते हैं, वे स्वरित स्वर युक्त वर्ण होते हैं। स्वरित का लक्षण आचार्य पाणिनि के अनुसार **'समाहारः स्वरितः'** है। साधारणतया वेदमन्त्र के प्रत्येक पद में कोई न कोई स्वर उदात्त अवश्य रहता है और शेष अनुदात्त होते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य वर्णों का भी वेद में प्रयोग होता है। जैसे–प्रचय। इसके अतिरिक्त स्वरित के आठ भेद होते हैं – जात्य, क्षैप्र, प्रचित, प्रश्लिष्ट, अभिनिहित, तैरोविराम, तैरोव्यञ्जन और ताथाभाव्यस्वरित। यह जो आठवाँ ताथाभाव्यस्वरित है, वह मात्र ऋग्वेद में ही प्रयुक्त होता है। यजुर्वेद में उसके स्थान पर कम्प का प्रयोग किया जाता है। उच्चारण में हाथ द्वारा वर्णों का जो संकेत किया जाता है शिक्षाग्रन्थ उसको भी बताते हैं। उदात्त स्वर की सूचक तर्जनी, प्रचय की मध्यमा, अनुदात्त की कनिष्ठिका और स्वरित की अनामिका है। अनुदात्त का स्थान हृदय को, स्वरित का कर्णमूल को और प्रचय का सम्पूर्ण मुख को समझना चाहिए और इसी प्रकार से इन स्वरवर्णे का उच्चारण करते समय हस्त–सञ्चालन करना चाहिए। मन्त्रों को लिपिबद्ध करते समय अनुदात्त को पड़ीपाई (–) और स्वरित को खड़ी पाई (।) से प्रदर्शित किया जाता है। उदात्त स्वर के लिए कोई चिन्ह नही है। प्रचय स्वर के लिए भी कोई चिन्ह नही होता परन्तु ध्यान देने की बात है कि किसी पद में अनेक अनुदात्त स्वर होने की दशा में उदात्त के बाद तुरन्त आने वाला अनुदात्त स्वरित हो जाता है और शेष अनुदात्त प्रचय के रूप में चिन्ह रहित पाये जाते हैं किन्तु अन्तिम अनुदात्त पर चिन्ह लगाकर प्रदर्शित कर दिया जाता है। जात्य स्वरित पर उदात्त और अनुदात्त दोनों चिन्हों का प्रयोग होता है।

वेद में स्वरों का महत्त्व विशेष रूप से हैं क्योंकि उनमें यदि स्वर परिवर्तित हो जायें तो अर्थ बदल जाता है। इसलिए मन्त्रोंच्चारण हेतु स्वरों का ज्ञान होना अनिवार्य है। महर्षि पाणिनि ने यह स्पष्ट कहा है कि जो मन्त्र स्वर और वर्ण से हीन होता है, वह मिथ्या युक्त होने के कारण अभीष्ट अर्थ को प्रतिपादित नहीं करता अपितु वह वज्र बन कर यजमान का ही नाश कर देता है।

- मात्रा– वर्णों का दूसरा विभाग काल के आधार पर है। यह मात्रा के रूप में दिखाई पड़ता है। मात्रा से अभिप्राय है –वर्णों के उच्चारण में लगने वाला समय।

इसके तीन भेद हैं – ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत। ये अच् (स्वर) के भेद हैं। जिस वर्ण के उच्चारण मेंएक मात्रा का समय लगता है, उसकी संज्ञा ह्रस्व होती है। जिन वर्णों के उच्चारण में दो मात्राओं का समय लगता है, वे दीर्घ कहे जाते हैं। इसी प्रकार जिन वर्णों के उच्चारण में तीन मात्राएँ लगती हैं वे प्लुतसंज्ञक वर्ण हैं। इनके मध्य के अन्तर को उ, ऊ तथा उ३ के उच्चारण में लगने वाले समय के आधार पर समझा जा सकता है। वर्णमाला में वर्ण ह्रस्व हैं। जैसे – अ, इ, उ, ऋ और लृ। इनके उच्चारण मेंएक मात्रा का समय लगता है।

आ, ई, ऊ, ॠ,ए, ओ,ऐएवं औ इनके उच्चारण में दो मात्राएँ लगती हैं। अतः ये दीर्घ वर्ण हैं। प्लुत के प्रयोग का उदाहरण है– ओ३म् अथवा पुकारते समय कृष्ण३! आगच्छ।

1.5.2 उच्चारण स्थान

वर्णों का तीसरा विभाग उच्चारण स्थान के आधार पर किया गया है। उच्चारण के समय वायु मुख के जिन स्थानों से टकराता हुआ बाहर निकलता है वे वर्णों के उच्चारण स्थान माने जाते हैं। पाणिनीय शिक्षाग्रन्थ में इनकी संख्या आठ हैं – उर, कण्ठ, तालु, मूर्धा, ओष्ट, जिह्वा, दन्त, नासिका आदि। ह जब ङ, ञ, ण, न, म और थ, व, रएवं ल के साथ उच्चरित होता है तब उसका उच्चारण स्थान उरः होता है और यह औरस्य कहालाता है किन्तु स्वतन्त्र होने पर ह और अ दोनों कण्ठ से उच्चरित होते हैं। इकार, चवर्ग, शकार तालु से, उकारएवं पवर्ग ओष्ट से, ऋकार और टवर्ग रकार और षकार मूर्धा तथा लकार त वर्ग और सकार दन्त से उच्चरित होते हैं। शिक्षग्रन्थ क वर्ग का उच्चारण स्थान जिह्वामूल, व का दन्त–ओष्ट,ए औरऐ का कण्ठतालु तथा ओ और औ का कण्ठ–ओष्ट बताते हैं। अनुस्वार और यमों का उच्चारण स्थान नासिका है।

1.5.3 प्रयत्न

उच्चारण में जो प्रयास करते हैं, उस आधार पर भी वर्णों विभाग हुआ है। ये प्रयत्न दो प्रकार के हैं–आभ्यन्तर प्रयत्न और बाह्य प्रयत्न। आभ्यन्तर प्रयत्न के पॉच भेद है–– स्पृष्ट, ईषत्स्पृष्ट, विवृत्, ईषत्विवृत, संवृत्त। बाह्य प्रयत्न केएकादश भेद हैं–विवार, संवार, श्वास, नाद,घोष, अघोष, अल्पप्राण, महाप्राण, उदात्त अनुदात, स्वरित।

1.5.4 साम

साम का अर्थ है साम्य अर्थात् दोषरहित और माधुर्यादि गुण से युक्त उच्चारण। अक्षरों के उच्चारण करने में जो अनेक दोषएवं गुण उत्पन्न होते हैं। इनका शिक्षा ग्रन्थों में वैज्ञानिक रूप से वर्णन है।एक आदर्श पाठक के उच्चारण में माधुर्य, सभी अक्षरों का स्पष्ट कथन, पदों का विभाजन, स्वरयुक्त, धैर्य तथा लय का अनुगमन आदि गुण प्राप्त होने चाहिए। इसके विपरीत अधम पाठक दोषपूर्ण उच्चारण करने वाले, सिर हिला–हिला कर पाठ करने वाले और वर्णों को गान वाले होते हैं। ये वर्णों का शीघ्रतापूर्वक उच्चारण करते हैं। लिखा हुआ देखकर पढ़ते हैं, अर्थ ज्ञान के बिना और संकुचित कण्ठ से पढ़ते हैं।

- **सन्तान**

  इस शब्द का अर्थ है– संहिता अर्थात् पदों की अतिशय सन्निधि। पदों का स्वतन्त्र अस्तित्व रहने पर कभी कभी दो पदों का आवश्यकतानुसार शीघ्रता सेएक

के अनन्तर उच्चारण होता है। इसे ही संहिता कहते हैं। संहिता होने पर ही पदों में सन्धि होती हैं। उदाहरण के लिए 'वायो आयाहि' में दो स्वतन्त्र वैदिक पद हैं। जबएक ही वाक्य में दोनों का साथ–साथ उच्चारण होता है, तब संधि के कारण इनमें कुछ परिवर्तन हो जाता है। पूर्व उदाहरण के लिए सन्धि जन्य रुप वाय वायाहि होगा। इन सन्धियों सम्बन्धी नियमों का वर्णन भी प्रातिशाख्यग्रन्थों में प्रधानता से हुआ है।

शिक्षा वर्णो के उत्तम ढंग से उच्चारण के लिए वर्ण के स्थान, प्रयत्न, वर्णों की संख्या और प्रकृति सम्बन्धी आवश्यक ज्ञान प्रदान करती है। यहाँ पर उच्चारण के उचित विधि पर बहुत बल दिया गया है। किसी भी वर्ण का उच्चारण ठीक उसी प्रकार करना चाहिए, जिस प्रकार बिल्ली अपने बच्चे को दाँतों से पकड़ती है वि बच्चे न तो गिरते हैं और न हि उन्हें दाँत गड़ते हैं।

वेदाङ्ग व्याकरण –

1.6 व्याकरण का स्वरूप

व्याकरण वेदपुरुष का मुख है। जिस प्रकार शरीर में मुख का प्रमुख कार्य होता है – शब्दों का उच्चारण अथवा बोलना उसी प्रकार व्याकरणशास्त्र का कार्य शब्दों को उत्पन्न करना है। इसीलिए व्याकरण शब्द की व्युत्पत्ति–**''व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते शब्दा अनेन इति''** अर्थात् शब्द इसके द्वारा बनाये जाते हैं। इसलिए शब्दज्ञानजनकं व्याकरणम्ऐसा कहते हैं। व्याकरणशास्त्र के आचार्यों ने सर्वप्रथम मूलशब्द के रूपों को अलग किया। पुनः धातु और प्रत्यय के भेद को पहचाना। तत्पश्चात् प्रत्ययों के अर्थों का निश्चय करके उसकी प्रक्रिया निर्धारित की। इस प्रकार व्याकरणएक शास्त्र के रूप में हमारे सम्मुख आता है। सर्वप्रथम देवगुरुबृहस्पति ने 'शब्दपारायण' नामक ग्रन्थ की रचना की,ऐसा महर्षि पतञ्जलि अपने ग्रन्थ महाभाष्य में बताते हैं किन्तु इन्द्र रचित **''ऐन्द्र व्याकरण''** व्याकरण शास्त्र का प्रथम ग्रन्थ माना जाता है। यह ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है परन्तु इसका उल्लेख देवबोध रचित महाभारत की टीकाएवं तिब्बतीय ग्रन्थों में प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त वायु, भारद्वाज, भागुरि, पौष्करसादि, चारायण, काशकृत्स्न, शान्तनु, वैयाघ्रपद्य, माध्यन्दिनी, रौढि, शौनकि, गौतम, व्याडि, आपिशलि, काश्यप, गार्ग्य, गालव, चाक्रवर्मण, भारद्वाज, शाकटायन, शाकल्य, सेनक, स्फोटायन और औदुम्बरायण इत्यादि ये सभी महर्षि पाणिनि के पूर्ववर्ती व्याकरणाचार्य हैं जिन्होंने व्याकरण शास्त्र को समृद्ध करने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है इसमें कोई सन्देह नहीं है कि महर्षिपाणिनि संस्कृत व्याकरणशास्त्र के सबसे प्रतिष्ठित आचार्य हैं। इन्होंने भाषा निर्माण सम्बन्धी नियमों का अत्यंत सूक्ष्मतापूर्वक वर्णन अपने ग्रन्थ अष्टाध्यायी में किया है। इसका परिणाम यह है कि अष्टाध्यायी व्याकरणशास्त्र के सबसे बड़े मार्गदर्शक ग्रन्थ के रूप में प्रतिष्ठित है। इसमें बताए गए नियमों को उनके बाद के संस्कृत के सभी रचनाकारों ने स्वीकार किया है। इसकी उत्कृष्टता के कारण महाभाष्यकारपतञ्जलि ने .पाणिनि को भगवान् कह कर सम्बोधित किया हैं। बहुत से आचार्यों द्वारा अष्टाध्यायी में सूत्रों की संख्या चार हजार मानी हैं लेकिन कारिका नामक ग्रन्थ और सिद्धान्तकौमुदी के अनुसार सूत्रों की संख्या 3983 है। अष्टध्यायी के सूत्रों में अनेक आचार्यों ने आवश्यकतानुसार संशोधन किया है। व्याकरणशास्त्र में यह संशोधन वार्तिक नाम से प्रसिद्ध है। इन वार्तिककारों में वररुचि कात्यायन का नाम सबसे प्रसिद्ध है। कात्यायन अष्टाध्यायी के योग्यतम व्याख्याता हैं। वार्तिक रचकर उन्होंने, सूत्रों को समझने की नई दृष्टि प्रदान की। उनके द्वारा रचित वार्तिकों की

संख्या–4263 है। पाणिनि के सूत्रों पर वार्तिक लिखे जाने के पश्चात् महर्षिपतञ्जलि ने अध्याध्यायी परएक महती व्याख्या लिखी, जो महाभाष्य के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें उन्होंने पाणिनीय – सूत्रोंएवं उन पर लिखे वार्तिकों की विवेचना की है। इस विवेचना के अन्तर्गत सूत्रों से सम्बन्धित अपने विचारों को भी प्रकट किया है। महाभाष्य में कुल 84 आह्निक हैं। पातञ्जल महाभाष्य के 84 आह्निक विद्यार्थियों को पढ़ाये गए 84 दिन के पाठ हैं। इसमें अष्टाध्यायी के लगभग1689 सूत्रों पर भाष्य किया गया है। महाभाष्य के बाद व्याकरण दर्शन का सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ वाक्यपदीय है। इसके रचयिता भतृहरि थे। वाक्यपदीय में व्याकरणशास्त्र का दार्शनिक स्वरूप प्रकट हुआ है। भर्तृहरि की दृष्टि में ध्वनि अर्थात् स्फोट हीएकमात्र परम तत्व है और जगत उसी का रूपांतर है। अष्टाध्यायी पर अनेक वृत्तियाँ लिखी गई हैं। इसमें जयादित्य और वामनरचित काशिका वृत्ति अष्टाध्यायी की सर्वमान्य व्याख्या है। जयादित्य ने पाँच अध्यायों और वामन ने अन्तिम तीन अध्यायों की व्याख्या की गई है। इसके अतिरिक्त दुर्घटवृत्ति, प्रक्रिया दीपिका, मिताक्षरा 'सूत्रप्रकाश , व्याकरणसिद्धान्तसुधानिधि और भट्टोजिदीक्षित द्वारा अष्टाध्यायी पर शब्दकौस्तुभ नाम की महती वृत्ति लिखी गई है।

विद्वानों का कहना है कि अष्टाध्यायी की रचना का मूल उद्देश्य शब्दों की सिद्धि करना था। राजा शर्ववर्मा ने अपने लोगों के संस्कृत –भाषासम्बन्धी अज्ञान को दूर करने के लिए कातन्त्रव्याकरण नामक सम्प्रदाय की नीव डाली। इसका प्रमुख लक्ष्य संस्कृत का व्यवहारिक ज्ञान था । यह सम्प्रदाय शब्दों की प्रक्रिया शैली का प्रचार करता था। प्रक्रिया–शैली में रचित धर्मकीर्तिकृत रूपावतार, रामचन्द्र की प्रक्रियाकौमुदी तथा भट्टोजिदीक्षित की सिद्धांतकौमुदी आदि महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। इनमें सिद्धांतकौमुदी के अन्तर्गत मुनित्रय के सिद्धांतों का समावेश करते हुए, शब्दों की सिद्धि–प्रक्रिया का वर्णन है। इस प्रक्रिया–ग्रन्थ की प्रमुख टीकाओं के नाम है–तत्वबोधिनी, बालमनोरमा, सुखबोधिनी, तत्वदीपिका, रत्नाकर, इत्यादि।

1.7. व्याकरण का प्रयोजन

आप जानते है कि व्याकरणशास्त्रएक वेदाङ्ग है। इसका प्रमुख प्रयोजन वेद –मन्त्रों का शुद्ध वाचनएवं अर्थबोध कराना है। महर्षि पतञ्जलि ने व्याकरण महाभाष्य में प्रयोजनों का दो प्रकार से कथन किया हैं– मुख्य प्रयोजन और गौण प्रयोजन । महाभाष्य की टीका लिखने वाले आचार्यों का मानना है कि महर्षि पतञ्जलि ने महाभाष्य के प्रथम सूत्र द्वारा ही व्याकरणशास्त्र के सामान्य प्रयोजन का कथन कर दिया है। यह सूत्र है–**'अथ शब्दानुशासनम्'** अर्थात् शब्दों का अनुशासन करने वाला शास्त्र। इस सूत्र से यह निश्चित होता है कि लोक में प्रचलित सभी सार्थक शब्द चाहे वह लौकिक अथवा वैदिक भाषा के शब्द हों, उनका अनुशासन करना अर्थात् उनमें प्रकृति और प्रत्यय का ज्ञान कराना तथा उन शब्दों के निर्माण प्रक्रिया को बताना ही व्याकरण शास्त्र का सामान्य प्रयोजन है और मुख्य प्रयोजन हैं– रक्षा, उह, आगम, लघु और असन्देह।

1.7.1 रक्षा

वेदों की रक्षा व्याकरण का प्रमुख प्रयोजन है। मन्त्रों में वर्णों के लोप, आगम तथा वर्ण –विकार को भली–भाँति जानने वाला ही वेदों की रक्षा कर सकता है। यह ज्ञान व्याकरण के अध्ययन से होता है। जिसको व्याकरण का ज्ञान नहीं होगा उसे लोक में शब्दों का प्रयोग करते समय वर्ण का लोप और आगम नहीं दिखाई न देने के कारण जब वेदों में वर्णों के लोप और आगम का दर्शन होगा, तो वह भ्रम में पड़ जाएगाऐसी

स्थिति में व्याकरण का ज्ञान न होने के कारण उसमें पाठांतर की कल्पना करने लगेगा। जिससे महान अनर्थ हो जाएगा। किंतु व्याकरण पढ़नेवाला व्यक्ति भ्रम में नहीं पड़ता और उसे वेदार्थ का ज्ञान भली–भाँति हो जाता है। इस प्रकार वेदों के मूल –भाव की रक्षा व्याकरण के अध्ययन से सम्भव है।

1.7.2 ऊह

रक्षा के बाद ऊह दूसरा मुख्य प्रयोजन है। ऊह का अर्थ है–विभक्तिओं में परिवर्तन। वेद में जो मंत्र पढ़े गए हैं, उनमें प्रयुक्त पद सभी लिंगोएवं सभी विभक्तिओं में नहीं हैं।ऐसी दशा में यज्ञ आदि अनुष्ठानों में व्याकरण जानने वाला व्यक्ति को मंत्रों में प्रयुक्त पदों में आवश्यकतानुसार लिंङ्गएवं वचन के अनुसार विभक्ति–परिवर्तन करना पड़ता है। जिसको व्याकरण का ज्ञान नहीं है, वह उन मंत्रों में उचित ढंग से लिंङ्गो और विभक्तियों का प्रयोग करने में समर्थ नहीं होगा। इसलिए मंत्रों में उचित लिंङ्ग और विभक्ति प्रयोग का ज्ञान भी व्याकरणशास्त्र का महत्वपूर्ण प्रयोजन है।

1.7.3 आगम

साक्षात् वेद और परम्परागत ज्ञान को आगम कहते हैं। इस दृष्टि से यह वेद भी स्वयं व्याकरण का प्रयोजन है। ब्रह्मचारी को किसी दृष्ट कारण की अपेक्षा किए बिना ही षड्वेदाङ्गो सहित वेद का अध्ययन परम कर्तव्य के रूप में स्वीकार करना चाहिए।ऐसा श्रुति कहती है। वेदों के उन छह अङ्गों में मुख्य अङ्ग व्याकरण स्वयं है।ऐसे मे आगम को प्रयोजन बता कर महर्षि पतञ्जलि ने व्याकरण के अध्ययन को अनिवार्यघोषित किया है।

1.7.4 लघु

भाषा का प्रयोग करते समय लघुता व्यवहार में आ जाए, इसके लिए व्याकरण का अध्ययन करना चाहिए। वाक्य निर्माणएवं पद निर्माण आदि कार्यें के लघु प्रयोगों में कुशलता प्राप्त करना भी व्याकरण के अध्ययन का प्रयोजन है।

1.7.5 असन्देह

महर्षि ने व्याकरण का प्रयोजन असन्देह को भी बताया क्योंकि वैयाकरण को सन्देह नहीं होता। भाषा में या वेद में प्रयुक्त पदों के प्रयोग और उनके अर्थ को भलीभाँति समझने के लिए व्याकरण का अध्ययन आवश्यक है। उदाहरण के लिए स्थूलपृषती का अर्थ अलग–अलग समास करने पर दो प्रकार से निकलता है । कर्मधारय समास करने पर मोटी और बिन्दुओं वाली गौ और बहुब्रीहि समास करने पर स्थूलपृषती का अर्थ –जिसके शरीर पर मोट–मोटे बिन्दु हैं,ऐसी गौ। अब मन्त्र में स्थूलपृषती का अर्थ कर्मधारय के अनुसार होगा या बहुब्रीहि समास के अनुसार, इसका ज्ञान व्याकरण पढ़ने से होता है। पाणिनि के अनुसार यदि समास के अन्त में उदात्तस्वर होगा तो वहाँ तत्पुरुष समास होगा और यदि पूर्वपदप्रकृति स्वर होगा तो बहुब्रीहि समास होगा। इस प्रकार प्रसङ्गानुसार अर्थ–बोध के लिए व्याकरण का अध्ययन आवश्यक है।

इन प्रयोजनों के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रयोजन भी महर्षि पतञ्जलि ने बताये हैं। वे तेरह प्रयोजन वैदिक आख्यानोंएवं मन्त्रों से जुड़े हुए हैं। जिनसे साधु शब्दों के प्रयोग का महत्व ज्ञात होता है। इस प्रकार साधु शब्दों का ज्ञान ही व्याकरण काएकमात्र प्रयोजन है। वाक्यपदीय के रचनाकार भतृहरि के अनुसार ब्रह्म की प्राप्ति के लिए वेद का ज्ञान अनिवार्य है और वेद का ज्ञान व्याकरण के बिना नहीं हो सकता। उन्होंने

महर्षि पतंजलि के द्वारा बताए गए व्याकरण के प्रयोजनों का समर्थन किया है। और उनको ध्यान में रखकर व्याकरण के अध्ययन का निर्देश दिया है। व्याकरण थोड़े से परिश्रम में अधिक शब्दों का ज्ञान कराता है। लोक में जितने व्यवहार हैं, सभी शब्द द्वारा ही चलते हैं। व्याकरण शब्दों के अर्थ ज्ञान में सन्देह को दूर करता है अतः व्याकरण का अध्ययन अज्ञान–निवृत्ति के लिए आवश्यक है। वाणी मोक्ष का उपाय है। अपशब्द बोलने से पाप उत्पन्न होता है। अतः यह शास्त्र वाणी की चिकित्सा करता है। यह सभी विद्याओं में पवित्रएवं साधु शब्दों को बताने के कारण आदरणीय है। लोक में काव्य इत्यादि जितनी भी विधाएं हैं उन सब के लिए व्याकरण शक्ति ग्राहक का कार्य करता है। यह लौकिक और वैदिक दोनों प्रकार के शब्दों के लिए शक्ति –ग्रह है। अतः व्याकरण का अध्ययन वेद ज्ञान के द्वारा मोक्ष पाने के लिए आवश्यक है। अतः परम्परा से व्याकरण भी मोक्ष का साधन है। मोक्ष को पाने के लिए जितनी भी सीढ़ियां है, व्याकरण उनमें प्रथम सीढ़ी है।ऐसा आचार्य स्वीकार करते हैं क्योंकि व्याकरण का ज्ञान हो जाने से शब्द के विषय में बुद्धि–भ्रम दूर हो जाता है और मनुष्य को साधु शब्दों का ज्ञान हो जाता है।ऐसी स्थिति में आत्मा वेदमन्त्रों का ज्ञान ग्रहण करने में समर्थ हो जाता है।

1.8 व्याकरणशास्त्र का प्रतिपाद्य

व्याकरणशास्त्र की विशाल परम्परा रही है, जिसके अन्तर्गत पाणिनि का अष्टाध्यायी अग्रगण्य है। यह खेद का विषय है कि उनके पूर्ववर्ती सभी आचार्यों की रचनाएं लगभग नष्ट हो चुकी हैं। पाणिनि ने इन आचार्यो के सम्बधित नियमों को उनके नाम से अपने ग्रन्थ में स्थान दिया है। अष्टाध्यायी में लगभग 4000 सूत्र हैं। यह आठ अध्यायों में विभाजित है तथा प्रत्येक अध्याय में चार पाद हैं। संक्षेप में उनका विवरण इस प्रकार है –

1.8.1 प्रथम अध्याय

इस अध्याय में व्याकरणशास्त्र सम्बन्धी संज्ञाएं तथा परिभाषाएं हैं। इनमें पूर्ववर्ती .शास्त्रों में प्रयुक्त संज्ञाएं, प्रत्ययसम्बन्धी संज्ञाएं और धातुसंज्ञाओं को करने वाले सूत्रों का उल्लेख है। कुछ संज्ञाओं के सूत्र भाषा में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। जैसे– अए, ओ की गुणसंज्ञा होती है–अदेङ् गुणः। आ,ए, औ की संज्ञा वृद्धि है – वृद्धिरादैच्। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' अर्थात् धातु प्रत्यय और प्रत्यययुक्त शब्दों के अतिरिक्त सभी अर्थयुक्त शब्दों की प्रतिपादिक संज्ञा होती है। इन संज्ञाओं का प्रयोग व्याकरण प्रक्रिया में होता है।

1.8.2 द्वितीय अध्याय

विशिष्ट पदों का संकलन इस अध्याय का मुख्य विषय है। जिसके अन्तर्गत समासों का विस्तृत विवेचन तथा कारकों की व्याख्या है। इसमें समासरुप पदविशिष्ट का विवेचन है। सर्वप्रथम पूर्वपद प्रधानता वाले अव्ययीभाव समास उसके बाद उत्तरपद प्रधानता वाले तत्पुरुष समास तथा तत्पुरुष के बाद बहुब्रीहि समास का वर्णन है। उभयपद प्रधान द्वन्द्वसमास का उल्लेख अन्त में है। समास के उपरान्त विभक्तियों का वर्णन है।

1.8.3 तृतीय अध्याय

यहाँ पर कृदन्त –प्रकरण का उल्लेख है। इसके दो विभाग है– कृत्य प्रत्यय और कृत् प्रत्यय। यह प्रकरण धातु से नाम की उत्पत्ति का विधान करता है।

1.8.4 चतुर्थएवं पञ्चम अध्याय

इनमें तद्धित प्रकरण है। इस प्रकरण में नामसे नाम की उत्पत्ति का विवेचन है। यहीं पर स्त्री प्रत्ययों की भी चर्चा है। तद्धित प्रकरण के दो भेद हैं–अस्वार्थिक और स्वार्थिक तद्वितप्रत्यय । चतुर्थ अध्याय में तीन तद्धितप्रत्ययों का मुख्य रूप से वर्णन है– अण् , ठ्क् और यत् तथा पञ्चम अध्याय में छ, ठक, और ठञ् प्रत्ययों का उल्लेख है।

1.8.5 षष्ठ अध्याय

इस अध्याय में पहले प्रकृति अर्थात् धातुसम्बन्धी कार्यों का तथा बाद में प्रत्यय सम्बन्धी कार्यों का उल्लेख है। इनके अन्तर्गत सम्प्रसारण, आगम, आदेश इत्यादि प्रक्रिया विधि बताये गये हैं। स्वरविधि का भी वर्णन है। इस अध्ययाय में तिङ् और सुप् प्रत्ययों से सम्बधित प्रक्रिया का विवेचन है।

1.8.6 सप्तम अध्याय

यह अध्याय मुख्य रूप से प्रत्यय सम्बन्धीकार्यों का विवेचन करता है। प्रत्यय कार्यों के साथ आगमों का भी उल्लेख है। विप्रतिषेध सम्बन्धी कार्यों का वर्णन भी यहीं पर है।

1.8.7 अष्टम अध्याय

इसमें वर्णों के द्वित्व–विधि का वर्णन है। पुनः पदस्वर प्रक्रिया कथित है। पूर्वत्रासिद्धम नामक प्रसिद्ध सूत्र यहीं है। इस अन्तिम अध्याय में सन्धि प्रक्रिया सम्बन्ध सूत्र हैं।

संक्षिप्तता व्याकरणसूत्रों की प्रमुख विशिष्टता है। वैयाकरण विषयों को संक्षेप रुप से प्रस्तुत करने के लिए इतने प्रसिद्ध है कि उनके लिए कहा जाता है कि यदि विषय का प्रतिपादन करने में ये अर्ध मात्रा का कम प्रयोग करने में सफल हो जाते हैं तो इस प्रकार उत्सव मनाते हैं, मानों उनकेघर पुत्र का जन्म हुआ हो। आचार्य पाणिनि ने अपने ग्रन्थ को संक्षिप्त करने के लिए प्रत्याहार, अनुबन्ध, गण, संज्ञाएं, अनुवृत्ति और स्थान–स्थान पर अनेक सूत्रों केएक साथ प्रभावी होने पर पूर्वत्रासिद्वम् सदृश नियमों की (परिभाषाओं) स्थापना की है। व्याकरण शास्त्र के विषय–वस्तु के बोध के लिए इनका ज्ञान आवश्यक है क्योंकि ये व्याकरण की कुञ्जी हैं।

1.8.8 प्रत्याहार

प्रत्याहर संक्षेप कथन को कहते हैं। प्रत्याहारों का निर्माण माहेश्वर सूत्रों द्वारा होता है। इन्हें संस्कृत वर्णमाला भी कह सकते हैं– अइउण् ।१। ऋलृक् ।२।एओङ् ।३।ऐऔच् ।४। हयवरट् ।५। लण् ।६। ञमङणनम् ।७। झभञ् ।८।घढधष् ।९। जबगडदश्।१०। खफछठथचटतव् ।११। कपय् ।१२। शषसर् ।१३। हल् ।१४।

इन माहेश्वर सूत्रों के विषय मेंऐसी प्रसिद्धी है कि ये भगवान् शिव के डमरू से निकले हैं। इन सभी सूत्रों के अन्तिम वर्ण हल् (व्यञ्जन) हैं और इत् कहलाते हैं। प्रत्याहार बनाते समय प्रथम वर्ण के साथ इनका उपयोग किया जाता है। जैसे –अल् , हल् इत्यादि। अल् प्रत्यय के अन्तर्गत प्रथम सूत्र के अ से लेकर अन्तिम सूत्र के ल तक के सभी वर्ण आ जाते हैं। इनके मध्य के वर्णों की गणना करते समय सभी इत् संज्ञक वर्णों को छोड़ दिया जाता है। इसी प्रकार हल् प्रत्याहार के अन्तर्गत है वर्ग के ह से लेकर अन्तिम सूत्र के इत् संज्ञक वर्ण ल तक के सभी वर्ण आ जाते हैं। हल् प्रत्याहार में सभी व्यञ्जन वर्ण आते हैं। इसी प्रकार अच् प्रत्याहार में सभी स्वरवर्ण आ जाते हैं। अइउण् से अ औरऐऔच् से च् को लेकर अच् प्रत्याहार बनता है। यह अच् प्रत्याहार

अन्तिम हल् वर्णों को छोड़ कर शेष स्वर वर्ण – अ, इ, उ, ऋ, लृ,ए, .ओ,ए, औ का बोधक है। सामान्य रूप से माहेश्वर सूत्र से 42 से 44 प्रत्याहार तक मिलते हैं। माहेश्वर सूत्र से निर्मित अच् प्रत्याहार में कुल नौ स्वरवर्ण हैं। हल् प्रत्याहार में कुल तैंतीस वर्ण हैं।

व्यञ्जन वर्णों में – क ख, ग,घ,

च, छ, ज, झ

ट, ठ, ड, ढ

त, थ, द, ध

प, फ, ब, भ इनकी स्पर्श संज्ञा है।

सभी वर्गों के पांचवे वर्ण–ञ् म ङ ण, न ये अनुनासिक संज्ञक हैं।

य, व, र, ल अन्तस्थ और श ष स ह ये ऊष्म संज्ञक वर्ण हैं।

1.8.9 अनुबन्ध

व्याकरण प्रक्रिया में अनुबन्ध का महत्वपूर्ण योगदान है। ''इत्संज्ञायोग्यत्वम् अनुबन्धत्वम्'' जो अक्षर इत् होते हैं उनका लोप हो जाता है। यथा– माहेश्वर सूत्रों के अन्तिम वर्ण। इसी प्रकार अष्टाध्यायी के सूत्रों में स्थान – स्थान पर अनुबन्ध प्राप्त होते हैं। यद्यपि इत्संज्ञक होने से लोप हो जाता है फिर भी उन वर्णों का व्याकरण प्रक्रिया में उपयोग होता है। जैसे– व्याकरण के अनुसार जिन प्रत्ययों में ष् इत्संज्ञक है, उनसे बनने वाले शब्द को स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिए ङीष् प्रत्यय का प्रयोग होता है। किसी पुल्लिङ्ग को स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिए ङीप् और ङीष् दोनों के प्रयोग का नियम है। उदाहरण के लिए रजक से रजकी बनाने के लिए ङीष् प्रत्यय का प्रयोग करेंगें क्योंकि रञ्ज धातु से ष्नुव् प्रत्यय करने पर पुल्लिङ्ग में रजक शब्द बनता है। यहाँ पर रजक शब्द बनाते समय ष्नुव् प्रत्यय से ष् की इत्संज्ञा होकर उसका अनुबन्ध लोप हुआ है। इसलिए रजक से ङीष् लगा कर रजकी शब्द बनेगा। अनुबन्ध इत्संज्ञक होकर इस प्रकार कार्य करते हैं।

1.8.10 गणपाठ

अष्टाध्यायी में गणपाठ के द्वारा शब्दों के उत्पत्ति प्रक्रिया को संक्षिप्त किया गया है। जहाँ पर कईऐसे शब्द हैं जिनमेंएक ही प्रत्यय का प्रयोग करना हो याएक प्रकार की व्याकरण प्रक्रिया करनी हो, तो उन सब काएक गण बना कर उस गण के प्रथम शब्द को लेकरएक सूत्र बना दिया गया है तथा उसके समान शब्दों की सूची दे दी गई है।

1.8.11 अनुवृत्ति

छोटे छोटे सूत्रों की रचना द्वारा व्याकरण प्रक्रिया को संक्षिप्त करने में अनुवृत्ति महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। आचार्य पाणिनि प्रारम्भ के सूत्रों में जिन पदों का प्रयोग कर चुके होते हैं उन पदों की अगले सूत्र में पुनरावृत्ति नहीं करते। जो पद अगले सूत्र में आवश्यक होता है उस पद का, पूर्वसूत्र से अनुवर्तन कर लेते हैं। व्याकरण में इस नियम को अनुवृत्ति कहते है। पाणिनि ने कुछऐसे सूत्र भी बनाये हैं जिनका अलग से कोई अर्थ नहीं होता है लेकिन परवर्ती प्रत्येक सूत्र से जुड़ने पर उनका अर्थ प्रकट होता है।ऐसे सूत्र अधिकार सूत्र कहे गये हैं। इस प्रकार केएक सूत्र का अनुवर्तन तब तक होता रहता है जब तक अगला अधिकार सूत्र नहीं आ जाता।

1.9 सारांश

वेद के सभी छह अङ्गों में शिक्षाएवं व्याकरण दोनों का प्रमुख स्थान है। शिक्षा को वेदरूपी पुरुष की नासिका तथा व्याकरण को मुखस्थानीय महत्व प्राप्त है। ब्राह्मण ग्रन्थों के समय में ही ये वेदाङ्ग अस्तित्व में आ गए थे। शिक्षा नामक वेदाङ्ग के अन्तर्गत दो प्रकार के ग्रन्थ विद्यमान हैं– प्रातिशाख्य और शिक्षाग्रन्थ। इन ग्रन्थों का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है– मन्त्रों के उच्चारण–प्रक्रिया को उन्नत बनाना। प्राचीन से ले कर अर्वाचीन काल तक के आचार्यों का दृढ़ मत हैं कि वैदिक मन्त्रों के सम्यक् उच्चारण में ही उनकी सार्थकता है। यह भी महत्वपूर्ण है कि वेद के सभी शाखाओं की उच्चारण सम्बन्धी कुछ मूल विशिष्टतायें होती थी जिन्हें उस शाखा के अध्येता को जानना अनिवार्य होता था। सभी वेदों के अपने–अपने प्रातिशाख्य ग्रन्थ हैं, जो उच्चारण प्रक्रियाएवं स्वर नियमों का प्रतिपादन करते हैं। वर्तमान में ऋग्वेद काएकमात्र प्रातिशाख्य ग्रन्थ उपलब्ध है। जिसके रचयिता आचार्य शौनक हैं। वाजसनेयिप्रातिशाख्य शुक्ल यजुर्वेद के दोनों शाखाओं के उच्चारण–नियमों को प्रतिपादित करने वालाएकमात्र प्रातिशाख्य है। तैत्तिरीय प्रातिशाख्य सभी कृष्णयजुर्वेदीय शाखाओं का प्रतिनिधित्व करता है। सामवेद के तीन तथा अथर्ववेद के दो प्रातिशाख्य वर्तमान में उपलब्ध हैं। शिक्षा ग्रन्थ अपनी–अपनी शाखा सम्बन्धी संहिताओं के वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम और सन्तान पर गम्भीरतापूर्वक विचार करते हैं। वर्तमान में कुल चौंतीस शिक्षाग्रन्थ उपलब्ध हैं। इससे स्पष्ट है कि प्राचीन काल में वेद–मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण पर अत्यधिक बल दिया जाता था। इस बात के अनेक उदाहरण हैं कि उच्चारण में स्वर बदलते ही मन्त्र का अर्थ बदल जाता है जिसके परिणाम स्वरूप यजमान का उत्कर्ष के स्थान पर अपकर्ष होजाता है। शिक्षा की भॉति व्याकरण भी अत्यन्त महत्वपूर्ण वेदाङ्ग है। वेदों की रक्षा के लिए व्याकरण का अध्ययन परम आवश्यक है। पाणिनीय व्याकरण के अन्तर्गत सूत्रपाठ, धातुपाठ, गणपाठ, उणादिपाठ तथा लिङ्गानुशासन के साथ–साथ कात्यायन रचित वार्तिकएवं महर्षि पतंजलि का महाभाष्य सम्मिलित है। महर्षि पतञ्जलि के अनुसार व्याकरण के आदि प्रवक्ता ब्रह्मा हैं। संस्कृत वाङ्मय में कुल नौ व्याकरण परम्पराओं का उल्लेख प्राप्त होता है जिनमें पाणिनीयव्याकरण सर्वोत्कृष्ट हैं। 'ऐन्द्र व्याकरण' चान्द्र व्याकरण काशकृत्स्नव्याकरण, कौमारव्याकरण, शाकटायनव्याकरण, सारस्वतव्याकरण, आपिशालिव्याकरण, शाकलव्याकरण और पाणिनीयव्याकरण। अष्टाध्यायी सूत्रशैली में लिखा गया ग्रंथ है। इसमें लगभग चार हजार सूत्र हैं तथा दो हजार धातुओं की गणना है। सूत्रों की विशेषता होती है कि ये कम शब्दों में अधिक अर्थ बताने की क्षमता रखते हैं। इनमें सन्देह का अभाव होता है, प्रकरण को साररूप में प्रकट करते हैं तथा आवश्यक सभी स्थानों परघटित होते हैं। अष्टाध्यायी का प्रथम सूत्र वृद्धिरादैच् है और अन्तिम सूत्र 'अ अ' है ' इस ग्रन्थ में जो कमियाँ आचार्य वररुचि कात्यायन को दिखी उनपर उन्होंने वार्तिकों की रचना की। जो आचार्य पाणिनि द्वारा बताया गया अथवा छूट गया अथवा दोषपूर्ण बताया गया उन सभी पर कात्यायन ने वार्तिकों की रचना की है। सूत्र और वार्तिकों की व्याख्या करते हुए महर्षि पतञ्जलि ने व्याकरणमहाभाष्य नामक ग्रन्थ लिखकर अष्टाध्यायी के सूत्रों को पुनः प्रतिष्ठित किया। इन मुनित्रय के सिद्धान्तों के आधार पर भट्टोजिदीक्षित ने वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी नामक प्रक्रिया ग्रन्थ की रचना की। इनके शिष्य वरदराजाचार्य ने सारसिद्धान्त कौमुदी, मध्यसिद्धान्त कौमुदी और लघुसिद्धान्त कौमुदी की रचना की, जिनमें अष्टाध्यायी के 1275 सूत्रों का वर्णन है। यही ग्रन्थ वर्तमान में व्याकरणशास्त्र के रुप में छात्र–छात्राओं को पढ़ाये जाते हैं।

प्रकृतिएवं प्रत्यय के अत्यन्त सूक्ष्म विवेचन व्याकरण नामक वेदाङ्ग प्रस्तुत करता है। शब्दों का अनुशासन करना व्याकरणशास्त्र का सामान्य प्रयोजन है। महर्षि पतञ्जलि ने रक्षा, उह, आगम, लघु और असन्देह इन पाँच को व्याकरण के प्रमुख प्रयोजन बतायें हैं। वेद के छह अंङ्गो में व्याकरण प्रधान है। परब्रह्म की प्राप्ति के लिए वेद का ज्ञान अनिवार्य है और वेद का ज्ञान व्याकरण के अभाव में सम्भव नहीं है। व्याकरण का अध्ययन लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के फलों को प्रदान करने के कारण उत्तम तप माना गया है। इसलिए व्याकरण का ज्ञान सभी के लिए अपरिहार्य है।

1.10 पारिभाशिक शब्दावली

प्रातिपदिक – जिसमें सुप् प्रत्यय अथवा तिङ् प्रत्यय लगता है,ऐसे सभी सार्थक शब्द जो न तो धातु होते हैं और न ही प्रत्यय।

सम्प्रसारण – य,व,र,ल के स्थान पर क्रमशः इ, उ, ऋ और लृ का प्रयोग सम्प्रसारण कहलाता है।

यम – वर्गों के आदि चार वर्णों में से किसीएक से परे किसी भी वर्ग की पञ्चम वर्ण आए तो उनके मध्य पर्वू वर्ण के सदृश जो ध्वनि होती है, उसे यम कहते हैं। यथा – पलिक्नीः, चख्नधुः, जग्मतुः और जघ्नथुः।

पद – शब्द अथवा धातु से जब प्रत्यय लग जाते हैं तब वे पद बन जाते हैं। संस्कृतभाषा में पदों का ही प्रयोग होता है। जैसे –राम शब्द है और रामः पद। इसी प्रकार गम् धातु है और गच्छति पद।

वृत्ति – पद जब अपना मूल अर्थ पूर्ण रूप या आंशिक रूप से छोड़कर, किसी विशिष्ट अर्थ को बताने लगता है तब उसे वृत्ति कहा जाता है। ये पांच होते हैं – कृदन्तवृत्ति, तद्धित्वृत्ति, समासवृत्ति,एकशेषवृत्ति और सनाद्यन्तवृत्ति।

वैयाकरण – व्याकरणशास्त्र के मूर्धन्य आचार्यों का उल्लेख इस संज्ञा पद से होता है।

वर्णलोप – विद्यमान वर्ण का न दिखाई देना लोप कहलाता है।

वर्णविपर्यय– कई बाद शब्दों का उच्चारण करते समय वक्ता उन शब्दों में स्थित वर्णों के क्रम में परिवर्तन कर देते हैं। इस प्रवृत्ति को वर्णविपर्यय की संज्ञा प्राप्त है।

आगम – उच्चारण के समय मुख सुख के लिए अथवा व्याकरण के नियमानुसार शब्दों में अतिरिक्त वर्ण जोड़ने को आगम कहते हैं।

अन्तेवासी – गुरुकुल में पढ़ने वाला छात्र।

अर्थवाद – वेद की प्रशंसा करने वाले वाक्य।

1.11 बोधप्रश्न

1– शिक्षा नामक वेदांग के स्वरूप पर प्रकाश डालिए।

2– प्रातिशाख्य ग्रन्थों के प्रतिपाद्य का वर्णन करते हुए प्रमुख प्रातिशाख्य ग्रन्थों का परिचय दीजिए।

3– प्रमुख शिक्षा ग्रन्थों का उल्लेख कीजिए।

4– वेदाङ्ग–शिक्षा के प्रयोजनों का निरूपण कीजिए।

5– व्याकरण शास्त्र के स्वरूप पर प्रकाश डालिए।

6– पतञ्जति के अनुसार व्याकरण के प्रयोजनो पर विस्तार से प्रकाश डालिए।

1.12 सन्दर्भग्रन्थ –सूची

1– अष्टाध्यायी, पाणिनि।

2– वेदाङ्ग द्वितीय खण्ड, संस्कृत वाङ्मय का वृहद् इतिहास , उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान द्वारा प्रकाशित, लखनऊ . 1997

3– वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी चौखम्भाप्रकाशन, वाराणसी

4– लघु सिद्वान्त कौमुदी चौखम्भा प्रकाशन 'वाराणसी ।

5– वैदिक साहित्यएवं संस्कृति, बलदेव उपाध्याय, शारदा संस्थान, प्रकाशन ' वाराणसी–1993

6– संस्कृत व्याकरण प्रवेशिका, डॉ बाबू राम सक्सेना, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY